बाल साहित्य

आधी हकीकत आधा फसाना

सुशील शुक्ल

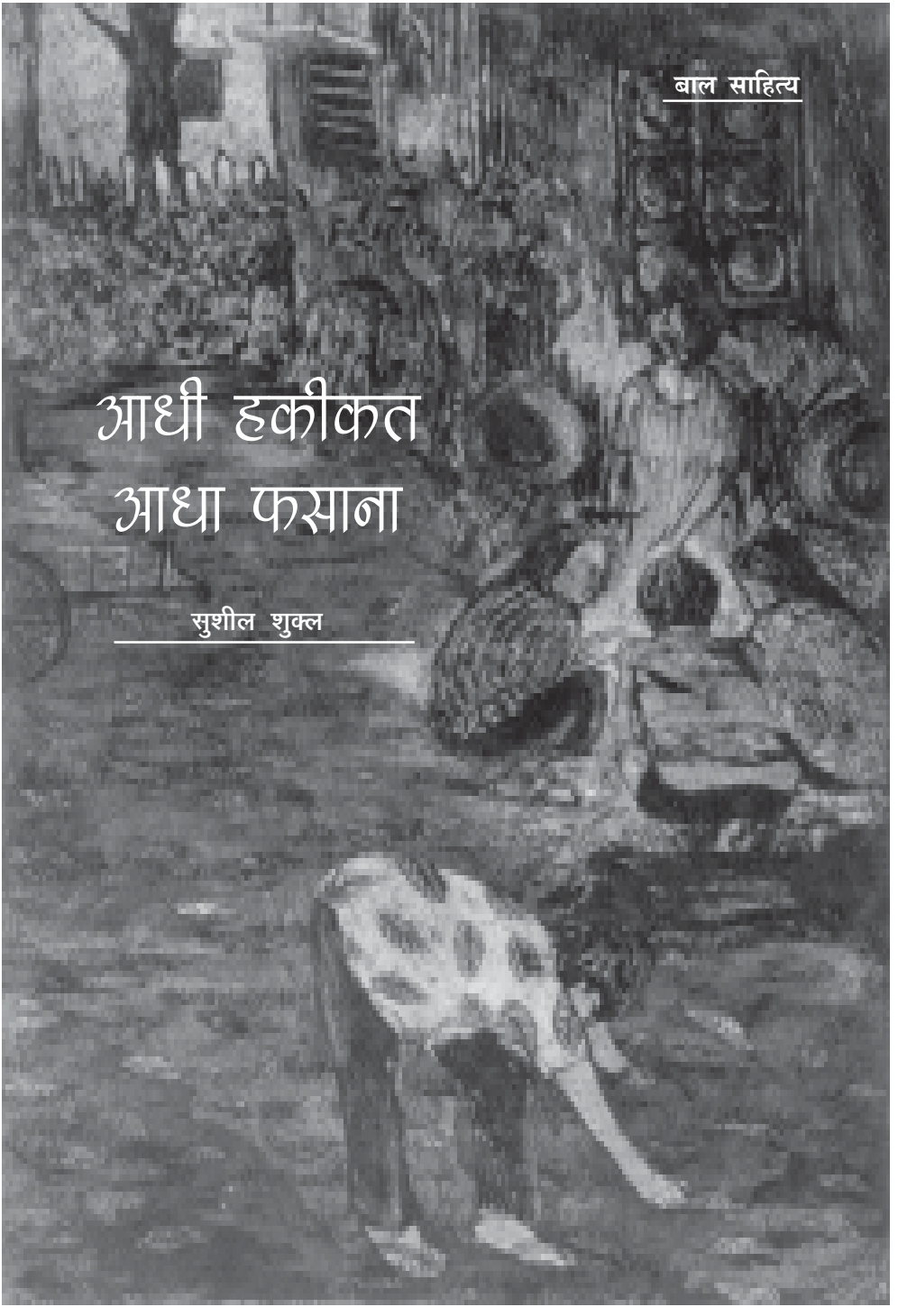

मुझे साहित्य बहुत पसन्द है। उसे पढ़कर, लिखकर अच्छा लगता है। एक अजब-सी खुशी मिलती है। जीवन के दूसरे कामों में भी मज़ा आता है। घूमने में मज़ा आता है। खासकर पैदल घूमने में। आस पास को देखते हुए। कई बार सुनसान रस्तों पर घूमने में मज़ा आता है। कई बार चलते रास्तों पर भी मज़ा आता है। गाड़ियों का शोर, आते-जाते लोग, जीवन की गहमागहमी दिखती है। कोई बड़ी गाड़ी निकलती है जिसमें एक ही व्यक्ति दिखता है। कभी मुझे वह बहुत अकेला लगता है। कभी नहीं भी लगता। एक छोटी-सी दुपहिया गाड़ी में चार लोगों को जाते देखता हूँ। जीवन से भरे। कई बार तो उन्हें देखकर लगता है मैं उसी तरफ मुड़कर चलने लगूँ जैसे कि जीवन की दिशा वही है। पर तभी कोई जीवन से उतना ही भरा हुआ उसके ठीक उलट दिशा में जाता दिख जाता है। कि मुझे हँसी आ जाती है। मेरा सारा दिशाज्ञान धरा रह जाता है। मुझे अपनी मूर्खता और मूर्खता पहचानने की समझदारी, दोनों पर प्रेम आता है। जब पैदल चलता हूँ तो ज़मीन में चल रही चींटियों के झुण्ड को देखकर भी यही भाव आ सकता है और ऊपर आसमान में छह-आठ के गुच्छों में कहीं चले जा रहे परिन्दों को देखकर भी।

चलता हुआ कहीं पहुँचता हूँ तो वहाँ पहुँचने का आनन्द आता है। झील देखने, फिल्म देखने, अजनबी लोगों से मिलने और बात करने का ...किस-किस बात को याद करूँ जो आनन्द देती है। जो होता है अच्छा लगता है। एक कवि के शब्द उधार लेकर कहूँ तो कि बात यह नहीं है कि कहीं मन नहीं लगता है। कहीं मन थमता नहीं है। बल्कि हर जगह मन लगता है। हर जगह मन थमता है। हर जगह आनन्द आता है।

चाय की गुमठी पर कोई लगातार चाय बनाए जा रहा है। कोई लगातार सड़क बनाए जा रहा है। कितने-कितने अनवरत हो रहे कामों में लगे लोग हैं। एक ही काम। लगातार। जब सड़क पर पाँव रखता हूँ तो सड़क को सिर झुकाकर सिर्फ इसलिए नहीं देखता हूँ कि वहाँ पाँव जमेगा कि नहीं बल्कि जिन हाथों ने सड़क पर गिट्टी बिछाई होगी उन हाथों के लिए, जिन हाथों में डामर चिपक गया होगा और जो हथेलियों की चमड़ी लेकर ही निकला होगा उन हाथों के लिए भी जैसे सिर झुकाता हूँ।

हमारा जीवन-साझा जीवन

मुझे लगता है जैसे हम अपना जीवन खुद रचते हैं। बल्कि हमें बनाना पड़ता है। और कोई रास्ता नहीं है। जब हम अपना जीवन रचते हैं तब हम सिर्फ अपना जीवन ही नहीं रचते। हम एक साझा जीवन रचते हैं। हमारी रचना का असर सिर्फ हम पर ही नहीं पड़ता। यही वह बिन्दु है जहाँ से हम रचना का औचित्य निर्धारित करते हैं। कि हम जो रचने जा रहे हैं वह

हमारे साझे जीवन के लिए कैसा होगा।

वह दिन जब हमने इस दुनिया को पहली-पहली बार देखा। यह सिर्फ इन्सान के जन्म तक सीमित नहीं है। जब एक शिशु जन्म लेता है तब इस दुनिया के बारे में क्या सोचता होगा? एक इतना असहाय जीवन। पूरी तरह इस दुनिया के जीवन पर टिका। नए जीवन का वह पहला दिन इस दुनिया पर विश्वास कर लेने का सबसे चरम क्षण होता होगा। यह मुहावरा बहुत सुहाना लगता है जब कोई कहता है कि अपने में बच्चे को बचाओ। कोई कहता है महात्मा गाँधी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमें आखिर तक एक बच्चा बचा रहा। किसी व्यक्ति में बच्चे के बचे रहने के कई अर्थ होते होंगे। जैसे उसे अभी इस दुनिया की, अपने जीवन की आदत नहीं पड़ी है। इसलिए उसके सामने रोज़-रोज़ चीज़ें जादू की तरह खुलती हैं। नल की टोंटी खुलने से पानी का आ जाना भी उसके लिए एक जादू है। पर मुझे लगता है इसके साथ एक और चीज़ है जो इस बात का परिचय देती है कि आप अपने भीतर किस हद तक बचपन सहेज पाए हैं - वह है इस दुनिया पर आपको कितना यकीन है। वही यकीन जो पहले-पहले दिन आपने इस दुनिया पर किया था।

बहरहाल, इस नए जीवन को फैलने-फूलने के लिए उसके आसपास का सारा जीवन लग जाता है। रिश्तेदार ही नहीं, कोई अजनबी भी, बच्चे को देखकर कुछ नरम हो जाता है। उससे संवाद करना चाहता है। एक बार उसकी तरफ मुस्कुराकर देखना चाहता है। जैसे हमें याद रहता है कि यह एक जीवन हमारे ग्रह पर साथ रहने आया है। एक बच्चे के जीवन क्षणों में से उसके साथ रहने वालों के जीवन क्षणों को अलगाया ही नहीं जा सकता। किसी जीवन को अलगाया नहीं जा सकता। एक चींटी के जीवन को भी नहीं। जैसे हम सब अपना-अपना जीवन जीते-जीते थोड़ा-थोड़ा दूसरों का जीवन भी जीते हैं। चींटियों, परिन्दों की तो बात ही क्या, हम चाँद-सितारों से भी उस उमर में बच्चों का रिश्ता जोड़ देते हैं जब शायद उन्हें अपना खुद का आँगन एक दूसरे ग्रह जैसा अजनबी लगता हो। जब कोई शिशु गिर जाता है तब हम उसे यह कहकर समझाते हैं कि चुप हो जाओ, देखो, तुम्हारे गिरने से एक चींटी को चोट लग गई है। एक बच्चे के गिरने से धरती पर कोई चींटी मर जाती है या उसे चोट लग जाती है। यह कितनी सुन्दर बात है। एक व्यक्ति जिसे अभी-अभी चोट लगी है उसका ध्यान अपनी चोट पर से हटाकर हम एक चींटी पर ले आते हैं। हम जैसे बच्चे को बताते हैं कि एक चींटी भी है इस दुनिया में। एक चींटी को चोट लग सकती थी की बात चींटी को चोट लग गई है की तरह सच बनकर आती है। अक्सर ऐसे ही वाकयों में सच अपने सबसे सुन्दर रूप में प्रस्तुत होता है। एक

चींटी जो उस क्षण वहाँ नहीं थी जब बच्चा वहाँ गिरा था। इससे दो बातें सामने आती हैं - एक तो कि चींटी का महत्व इससे ज़ाहिर होता है जिसका न होना तक काम आता है। और जीवन का सबसे गहरा फलसफा भी इससे सामने आता है कि जीवन असल में कुछ नहीं है से एक अर्थवान क्षण पैदा करना है।

साहित्य का काम इस चींटी की ही तरह है। वह हममें एक चींटी की स्मृति की तरह रहता है। चुपचाप। वह इस धरती पर एक ऐसा क्षण पैदा करता है जिसमें हम किसी की परवाह करते हैं। उस क्षण में भी जब खुद हम पर संकट आया हो। एक ऐसा क्षण जिसने एक चींटी को नहीं बल्कि चींटी के न हो सकने तक को बचाया। ज़रूरी नहीं कि आपके अनुभव आपके साथ असल में घटित हों। वे कल्पना में घटित होकर भी हमारी स्मृति में समान गहराई से जुड़ सकते हैं। वरना एक अफसर की अफसरशाही, एक नौकर का संघर्ष हम बिना अफसर बने और बिना नौकर हुए समझ ही न पाते।

साहित्य - खालीपन को भरना

साहित्य-कलाएँ हमारे इस स्वभाव को रचती हैं। अपने अनुभव को कोई लिखता है, कोई उसके चित्र बनाता है। कोई इसी से संगीत रचता है। कहते हैं कि हर रचना के बाद हमारी दुनिया कुछ बदल जाती है। जैसे एक

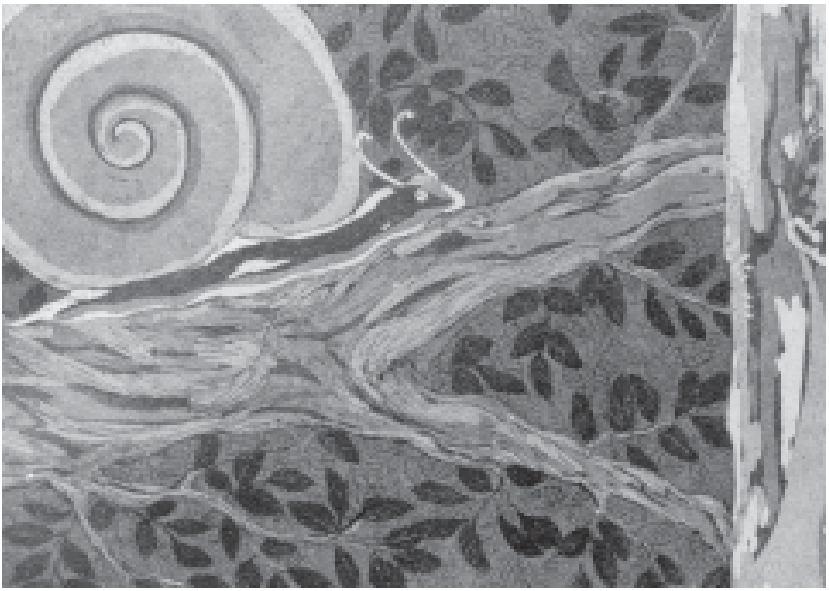

रचना के बाद रचनाकार तथा उसे पढ़ने वाले बदल जाते हैं। अगले क्षण का सामना जब हम करते हैं तो हमारी नज़र में, हमारे मन में यह रचना शामिल रहती है। एक चौकीदार की कहानी पढ़ने के बाद एक चौकीदार से आप मिलेंगे तो वैसे नहीं मिलेंगे जैसे आप उसे पढ़े बगैर मिल सकते थे।

जीवन में निर्माण के इस खेल की भनक शुरुआती दिनों में ही लग जाती है। कभी-कभी लगता है कि हमारे दुनिया के सारे खेल बच्चों ने रचे होंगे। गुड्डे-गुड़िए के खेल से लेकर तमाम अन्य हज़ारों-हज़ार खेल। पत्थर के टुकड़ों के खेल। बच्चे तो नाकुछ से भी चन्द मिनिटों में कोई-न-कोई खेल बना लेंगे। इतने रचनाशील, कल्पना-शील बच्चे क्या यह नहीं जानते कि गुड्डे-गुड़िए के विवाह नहीं होते। वे निर्जीव होते हैं। बात नहीं कर सकते। पर फिर भी गुड्डे से कोई बात कही जाती है और फिर उसका जवाब भी दे दिया जाता है। अपने भीतर एक तरह से एक दूसरा पैदा होता है। शामिल होता है। रचा जाता है। इसलिए अक्सर रचने के कच्चे माल की बहुत परवाह नहीं की जाती है। कागज़ की नाव का खेल इस सिलसिले में एक सुन्दर उदाहरण बन सकता है। कागज़ की नाव का खेल कोई बच्चा ही सोच सकता है। कागज़ और नाव दो असम्भवों का मेल है। कोई जब कागज़ की नाव बनाता है तो वह सिर्फ कागज़ की नाव भर नहीं बनाता है। वह एक नदी बनाता है। वह कोई किनारा बनाता है। और अक्सर खाली दिखती नाव में बनाने वाली या बनानेवाला खुद बैठा होता है। और बेहद यकीन से बनाता है। यह राज़ पानी को भी पता नहीं चलता वरना नाव ज़्यादा दूर न चल पाती। तो कागज़ की नाव बनती है। कभी होंगे बड़े। कभी नाव में बैठना होगा। कभी नाव चलाना भी होगा। पर आज जो एक क्षण है और उसमें ही इस इच्छा को साकार करना है। किसी नदी के किनारों पर ठहरी किसी नाव को देखकर मन में एक मीठी लहर दौड़ जाती है जैसे बचपन के उसी कागज़ की नाव के खेल को किनारा मिल गया हो।

कल से बड़ा आज

हर बच्चे को लगता है कि उसे अपनी एक दुनिया रचना है। एक तो इसलिए कि यही हमारी हज़ारों वर्षों से चले आ रहे साझा जीवन की स्मृतियों का जीवाश्म हैं। और दूसरे इसलिए भी कि बड़ों से तथा बड़ेपन से भरी दुनिया में कुछ करने के लिए उन्हें अपनी एक नई दुनिया रचनी पड़ेगी। जहाँ बड़ों की रोक-टोक नहीं होगी। हमारी कल्पना तथा सपने तथा आकांक्षाएँ हमेशा जीवन से कुछ आगे जाते रहते हैं। हमारे जीवन का एक क्षण हमारे उस क्षण के जीवन से कुछ बड़ा होता है। इसलिए हमें अक्सर उस क्षण में अपना एक क्षण जोड़ना पड़ता है। हर व्यक्ति को एक क्षण मिलता है। और वह व्यक्ति उसमें

अपना एक क्षण जोड़ देता है। यह भी कितना सुन्दर है कि हर व्यक्ति अपने मन का, अपने रंग का अपना विलक्षण क्षण जोड़ता है। दुनिया में जो ये विवध रंग दिखते हैं वे इन्हीं क्षणों के हैं। वरना दुनिया कितनी नीरस होती। और इस तरह एक क्षण से हम अरबों इन्सान और अरबों जीव अरबों तरह के क्षण तैयार कर लेते हैं। अगर ऐसा न होता तो यह समय कब का बीत जाता। कोई चित्र बनाकर, कोई खेल खेलकर, कोई कविता लिखकर या कोई गीत गाता है। यह क्षण जो साहित्य में कला में या खेलों में या यूँ ही सोचकर कहीं निर्मित हुआ है वह हमारी दुनिया में वापिस लौटता है। एक सपने की मंज़िल हकीकत हो जाना नहीं है। क्योंकि वह तो देखे जाने के साथ ही पूरा हो गया होता है। इसीलिए तो वह सपना है। और सिर्फ सपना होकर भी वह हमारी दुनिया में शामिल हो गया है। और उसने हमारी दुनिया को हरेक शय के लिए थोड़ा-सा और खोल दिया है। पर साहित्य सिर्फ एक क्षण के साथ एक सपने का क्षण ही निर्मित नहीं करता वह बीत रहे क्षण को और गहरा भी कर देता है। कभी-कभी उसे कुछ देर के लिए रोक लेता है।

भाषा भी खेल रचती है

कई बार जब चीज़ों के अर्थ रूढ़ होने लगते हैं, लगता है कि जैसे वे देखने, सुनने, समझने से खाली हो गई हैं तभी साहित्य या कलाएँ उनमें नए अर्थ भर कर चली जाती हैं। इस तरह भी साहित्य जीवन की पुनर्रचना करता है। उसमें नयापन घोलता है। बच्चे खास तौर पर खो जाने से डरते हैं। एक दुनिया जो हमारे बेहद नज़दीक है उसका खो जाना। बचपन में यह डर शायद बेहद रहता होगा। इसीलिए बच्चों ने इससे पार पाने के लिए छुपनछुपाई जैसा खेल रचा होगा जिसमें बार-बार खो जाना और मिल जाना होता है। छुपनछुपाई खेल देखकर लगता है कोई खोने और मिल जाने का रियाज़ कर रहा हो। अब बच्चों के साहित्य के एकदम पास आ जाते हैं। क्या जो साहित्य हमने बच्चों के लिए रचा है या चुना है उसमें बच्चों को किसी डर से पार पाने के अवसर हैं? क्या इस डर को खेल बनाकर रख देने का कोई खेल वह रचना रचती है? इस खेल में सिर्फ कहानी ही खेल नहीं रचती। भाषा भी खेल रचती है। शब्दों के माध्यम से, अर्थ के माध्यम से, अपने विन्यास से, कहन से। *बतूता का जूता* एक ऐसी रचना है। इब्नबतूता तूफान झेलकर फिर से मोची की दुकान पर खड़े हैं। शायद किसी अगले तूफान में निकल जाने के लिए नए जूते तैयार कर रहे हैं। ज़रा इस कविता को पढ़कर इब्नबतूता के बारे में सोचिए। मैं जब-जब यह कविता पढ़ता हूँ मेरी आँखों के सामने एक वाकया घूम जाता है। हमारे कस्बे के स्कूल के सामने एक बड़ा मैदान था। एक दिन पता चला वहाँ हमारे प्रदेश के कोई मंत्री

आने वाले हैं। झटपट मैदान की सफाई का काम शुरू हो गया। हमें पुआल उखाड़ने का काम मिला। बेतरतीब पड़ी साइकिलें एक कतार में जमा दी गईं। गर्मी के दिन थे। हवा चल रही थी। एक सफाई कर्मी बड़ी-सी झाड़ू लिए मैदान के सारे पत्ते झाड़ रहे थे। यह बात और है कि पत्ते पत्ते होते हैं, कचरा नहीं होते। कचरा हमारी सभ्यता का शब्द है। खैर। मैं देखता वे थोड़ी देर पत्ते झाड़कर ले जाते। और पत्ते दुबारा उड़कर फिर वहीं पहुँच जाते। हवा कई बार तेज़ हो जाती तो लगता जैसे उन्हें पत्तों ने घेर लिया है। ऐसे में उनकी आँखें बन्द हो जातीं। पर हाथ झाड़ू थामे चलते रहते। झाड़ू लगातार पत्तों को और हवा को और धूल को एक तरफ धकेलने में लगी रहती। वे पसीने से तरबतर होकर जाने क्या सोचकर हमारे प्रिंसिपल की तरफ देखते। पर मंत्री जी के आने के दबाव तले पिस रहे प्रिंसिपल तक उनका देखना न पहुँच पाता। मुझे हरेसिंग याद हैं तो इसमें कुछ हाथ इस कविता का भी है जिसने एक साथ इब्नबतूता और हरेसिंग को मेरी स्मृति में ज़िन्दा किए रखा। हरेसिंग की स्मृति को बचाए रखकर मुझे क्या मिला? बहुत कुछ। उसकी वजह से मैं सोचता हूँ कि जो क्षण या जीवन मैं रच रहा हूँ उसमें

दूसरों के लिए कितनी जगह है। आज भी जब किसी साफ-सुथरी सड़क पर गुज़रता हूँ तो लगता है कि किसी ने मेरे लिए यह सुथरी सड़क रची है। इसलिए एक साफ सड़क देखकर आज भी मेरा मन करता है कि एक फूल उस पर रख दूँ। तो सवाल उठता है कि क्या बच्चों का जो साहित्य हम लिख रहे हैं या जिसे बच्चों के हाथों में दे रहे हैं उसमें यह कुव्वत दिखती है? क्या उसमें पाठक के आसपास के किसी किरदार की अनुगूंज संजोई हुई है? क्या वह तूफान झेल कर एक और तूफान को झेलने की तैयारी कर रहे किसी नायक या नायिका को पेश करता है?

क्या उसमें कागज़ की नाव बना देने का साहस तथा भोलापन तथा प्रयोगशीलता है? क्या वह कल की तैयारी के लिए आज कागज़ की एक नाव बनाने का सलीका बता रहा है? क्या उसमें साझापन है? वह साझापन जिससे हमारा समूचा जीवन बना है। दो पैरों से तो सभी चलते हैं। बड़ों के लिए एक पैर से चलना दुस्वप्न हो सकता है पर बच्चों ने तो उसे भी खेल में बदल दिया। लंगड़ी का खेल। एक पैर से कई-कई बाधाएँ पार करने का खेल। क्या हमारे पास ऐसी कोई कहानी है जिसमें एक पैर खो जाने की त्रासदी को भुलाकर खोने वाला एक भरे-पूरे जीवन का स्वप्न देख सके?

पानी नीला या आसमान?

बचपन में हम दिन में कई बार नर्मदा को देखने जाते। देखने जाते। नहाते। नावें देखते। नर्मदा का नीला रंग उसके ठीक ऊपर के आसमान के नीले रंग से एक-सा लगता। इस रिश्ते के हिसाब से हमें एक बार भी अचरज न होता कि बारिश आसमान से आती है। बिना पानी की नदी रेत हो जाती है तो बिना नीले रंग के आसमान कैसा दिखता होगा? कभी लगता कि नदी का नीला रंग आसमान की परछाई है। तब रात में नदी देखने का मन करता। सोचते अगर आसमान की परछाई नदी में पड़ती है तो तारों की परछाई भी नदी में पड़ती होगी। और चाँद की भी। मन करता कि नदी के पानी को हिलाकर आसमान देखें कि चाँद और तारे हिलते हैं या नहीं हिलते। क्या बच्चों की कहानियाँ और कविताएँ उनकी इस कल्पनाशीलता को कोई जगह देती हैं?

ज़रा आसपास देखिए। अपने घर। अपने कमरे में। आपके कमरे में जो धूप और छाँव का खेल चलता है आपने उसे कभी देखा है? आपने कभी धूप को पकड़ने की कोशिश की है? वो मुट्ठी में नहीं आएगी यह बात आपको कैसे पता? आपके कौन-से अनुभव अर्जित किए हुए हैं? और कितनी बातें यूँ ही मान ली गई हैं? ये फिज़ूल बातें हैं न? तो चलिए कुछ ठोस बातें की जाएँ। जो नमक ज़रा-सा कम पड़कर आपका ज़ायका बिगाड़ देता है उसे आपके लिए कौन रचता है? क्या आपको पता है कि आपके नमक के लिए हज़ारों-हज़ार व्यक्ति अपने जीवन का ज़्यादातर हिस्सा झुके-झुके बिता देते हैं। जैसे हमारी कमर

अक्सर सीधी रहती है वैसे ही उनकी कमर अक्सर झुकी रहती है। ऐसे कितने ही जीवन हैं जिन्हें हम नमक भर नहीं जानते। बच्चों के लिए हम जो किताबें रचते हैं क्या उनमें यह धूप और नमक बराबर रहता है?

पानियों की बारिश

अपने शुरुआती जीवन में बच्चे चीज़ों को ऐसे देखते हैं जैसे दुनिया के सबसे पहले इन्सान ने उन्हें देखा होगा। एक कवि ने मुझसे कभी कहा था कि उसने पानियों शब्द बच्चों से सीखा है। किसी बच्चे ने कवि से पूछा था कि आप जिस पानी की बात कर रहे हैं वह तालाब का पानी है या नदी का या कुएँ का या बारिश का। कवि समझ गया। मैं सोचता हूँ पानी की एक बूँद पानी और नदी भर पानी भी पानी। नदी के पूरे पानी के लिए बल्कि एक बूँद के पानी को पहचानकर मैं एक ही नदी के पानी को भी पानियों कहना चाहता हूँ कि मैं उसकी एक-एक बूँद को उसके नाम से पुकारना चाहता हूँ। इसी रास्ते पर चलते हुए एक कवि ने पानी की बूँद से पानी को अलग देखते हुए कहा - आँखों ने चखा पानी, बूँदों में रखा पानी। कि बूँद सिर्फ पानी नहीं है वह पानी है और एक आकार है। सलाम! क्या हम जो चीज़ें बच्चों को पेश करते हैं उनमें किसी चीज़ को मिलाकर व तोड़कर देखने का यह तिलिस्म है? बारिश का उदाहरण लेते हैं। जब पानी को बहुवचन की ज़रूरत पड़ती है तो बारिश के बारे में सोचिए। बारिश के पानी के बारे में एक कवि प्रमोद ने लिखा है - पानी उतरा टीन पर, फिर उतरा ज़मीन पर। यानी पानी सीधा ज़मीन पर नहीं गिरा। बारिश की तैयारी का आसमान, और बारिश की तैयारी पर पानी फिर जाने का आसमान। बादलों की रंगतें पानी की पहली बूँदें, हवा का रुख, पानी के आने का मौसम। पानी के पेड़, पानी के आने की ज़मीन। पानी का बहना। पानी का ठहरना। पानी का ठहर कर बहना। किसी बाधा से उलझकर पानी का बहना। पानी के संघर्ष में उसका सफेद हो जाना। पानी के फेन। और पानी के प्रभाव। एक मज़बूत घर के भीतर से बारिश का आनन्द लेना और बारिश में एक कमज़ोर घर का संघर्ष। आप देखेंगे। हज़ारों-हज़ार रंग। इन्द्रधनुष सिर्फ आसमान पर नहीं बनते। वे ज़मीन पर बनते हैं और हज़ारों-हज़ार रंगों के साथ। क्या हमारी किताबों में भी इस इन्द्रधनुष के इस रंग की कोई झलक है?

सुशील शुक्ल: 'चकमक' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सभी चित्र: कनक शशि: एकलव्य प्रकाशन में डिज़ाइनिंग व विज़्युलाइज़ेशन का काम करती हैं। इस लेख में इस्तेमाल किए गए एचिंग (ग्राफिक प्रिंट) ज़िंक व आयरन प्लेट पर बनाए गए हैं।